इकाई २२ भूमंडलीकरण एवं राज्य

इकाई की रूपरेखा

२२.० उद्देश्य

२२.१ प्रस्तावना

२२.२ भूमंडलीकरण एवं इसके विभिन्न अर्थ

२२.३ राष्ट्र-राज्य एवं प्रभुसत्ता

२२.४ दक्षिण एशियाई राज्य एवं भूमंडलीकरण

२२.४.१ दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्य को चुनौतियाँ

२२.४.२ दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्य की संबद्धता

२२.५ दक्षिण एशिया में क्षेत्रावाद की गत्यात्कमता

२२.५.१ भूमंडलीकरण - क्षेत्रीय सहयोग -दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्य

२२.६ सारांश

२२.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

२२.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

२२.० उद्देश्य

इस इकाई में भूमंडलीकरण के अर्थ और गत्यात्कमता, विशेषकर दक्षिण एशिया के राष्ट्र-राज्यों पर इसके प्रभाव का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में वैश्विक आर्थिक क्रम के दक्षिण एशियाई राज्यों के साथ समेकन के महत्वपूर्ण पहलुओं का भी अध्ययन किया गया है। इस इकाई को पढ़ने के उपरांत आप

- भूमंडलीकरण की प्रक्रिया और इसकी विभिन्न विशेषताओं के बारे में जान पाएंगे;
- राष्ट्र-राज्यों पर, विशेषकर दक्षिण एशिया के राष्ट्र-राज्यों पर भूमंडलीकरण के प्रभाव का वर्णन कर पाएंगे; तथा
- वैश्विक क्रम के अनुसार दक्षिण एशियाई राज्यों के समेकन के पहलुओं की समीक्षा कर पाएंगें।

२२.१ प्रस्तावना

१७वीं शताब्दी की वेस्टफेलिया की संधि के उपरांत से प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य अंतरराष्ट्रीय संबंधों की मूल इकाई रहे हैं। आधुनिक काल में राष्ट्र-राज्यों के गठन से संबंधित कई युद्ध हुए। राष्ट्र-राज्य स्वतंत्राता की भावना का प्रतिनिधित्व करता है। राज्य के सर्वप्रभुसत्ता सम्पन्न होने का अर्थ विशिष्ट क्षेत्रीय सीमाओं में लोगों की स्वतंत्राता है जिसके इर्द-गिर्द आधुनिक अंतरराष्ट्रीय प्रणाली का विकास हुआ है। अंतरराष्ट्रीय संबंधों की दृष्टि से राज्य की केन्द्रीय स्थिति पर विश्वव्यापी विकास के कारण विकसित हुई कई शक्तियों का लगातार प्रभाव पड़ रहा है। विभिन्न स्तरों पर अपने लोगों के साथ संबंधों को पुनर्परिभाषित करने के उद्देश्य से राज्य में प्रमुख परिवर्तन आए हैं। यद्यपि राज्य की प्रभुसत्ता आज भी महत्वपूर्ण है परन्तु स्थानीय स्तर पर विघटन और वैश्विक स्तर पर समेकन के कारण यह संकुचित हो रही है। इस अध्याय में इसके विभिन्न पहलुओं की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

विभिन्न क्षेत्राों की विशिष्टताओं के आधार पर विश्व के विभिन्न क्षेत्राों में राष्ट्र-राज्य के परिवर्तन ने विभिन्न रूप लिए हैं। दक्षिण एशिया में राज्य में परिवर्तन का अपना रूप रहा है। इस अध्याय में भूमंडलीकरण के बहु अर्थों तथा राष्ट्र-राज्य पर उनके प्रभाव की चर्चा की गई है। इसमें विशेष रूप से दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्यों के परिवर्तन के विविध आयामों का वर्णन हुआ है। इस इकाई में भूमंडलीकरण की मौजूदा लहर के कारण बनी दक्षिण एशिया के क्षेत्राीय गठन की गत्यात्मकता पर भी चर्चा की गई है।

२२.२ भूमंडलीकरण एवं इसके विभिन्न अर्थ

भूमंडलीकरण की वर्तमान प्रक्रिया में स्पष्ट रूप से दो विरोधाभासी प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम, क्षेत्राीय व्यापार और राजनीतिक समझौतों पर हस्ताक्षर करने की दौड़ में राज्यों की स्वायत्तता समाप्त होती जा रही है। इस प्रक्रिया में राज्य ने वैश्विक प्रणाली में विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू. टी. ओ.) जैसी अंतरराष्ट्रीय इकाईयों को स्थान देते हुए अपने पुराने वर्चस्व को खो दिया है। दूसरे, राज्यों के संजातीय, जातीय, वर्ग, लिंग, जनजातीय और पारिस्थितिकीय समूह मौजूदा राज्यों में अधिक स्वायतता प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हैं। हमने इन आंदोलनों को कई नामों जैसे पहचान संबंधी आंदोलनों, नए सामाजिक आंदोलनों अथवा स्थानीय आंदोलनों का नाम दिया है। ऐसे आंदोलन विश्वभर में चल रहे हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से व्यक्ति अथवा समूहों के लिए राष्ट्रीय अभेदवाद का स्थान संजातीय, क्षेत्राीय, जातीय तथा धार्मिक अभेदवाद ने ले लिया है। आधुनिक समय में अपने नागरिकों की राष्ट्र-राज्य में निष्ठा पर एकाधिकार के दावे को जाति, लिंग, संजातीय अथवा भाषायी समूहों के कारण बनी हुई पहचानों के प्रति अपने झुकाव के कारण गंभीर चुनौती मिली है।

आर्थिक क्षेत्रा में भूमंडलीकरण का प्रभाव स्पष्ट और गहरा है। कई राष्ट्रीय अर्थव्यवस्थाएँ वैश्विक बाजार में शामिल हो रही हैं। वित्तीय बाजार और पूंजी निवेश राष्ट्रीय सीमाओं को बांध रहे हैं और इसके लिए अक्सर स्वेच्छा से प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य के नियंत्राण की भी अनदेखी कर रहे हैं। अंतरराष्ट्रीय व्यापार वैश्विक उत्पादन का २० प्रतिशत है तथा इसका आकलन ५ ट्रिलियन प्रतिवर्ष किया गया है। राष्ट्रों के आर्थिक भाग्य के निर्धारण में सीमा पार लेन-देन प्रत्यक्ष विदेशी निवेश तथा बहु-राष्ट्रीय कम्पनियों का महत्व बढ़ा है ।

फोर्डवाद के फैक्टरीमूलक उत्पादन का आधार राष्ट्र-राज्यों की संरक्षणात्मक नीतियाँ रही हैं जिनका स्थान आज विभिन्न क्षेत्राों और देशों में फैली उत्पादन सुविधाएँ तीव्रता से लेती जा रही हैं। फोर्डवाद के बाद इस युग में उत्पादन और यहां तक कि वितरण का नियंत्राण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथ में है। वर्तमान में शीर्ष की ५०० बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ वैश्विक उत्पादन के वृहत और बढ़ते हुए हिस्से के लिए उत्तरदायी हैं। वर्ष २००० में इन कम्पनियों के क्षेत्रावार वितरण से रोचक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। अधिकांश कम्पनियाँ (५६) उन बैंकिंग और वित्तीय क्षेत्राों में कार्यशील हैं जिनमें वास्तविक अर्थव्यवस्था में दीर्घावधि निवेश किए बिना वैश्विक वित्तीय बाजारों में सट्टा निवेश से शीघ्र लाभ उठाया जा सकता है। अन्य क्षेत्रा हैं- पैट्रोलियम रिफाइनिंग, आटो मोबाइल, दूर संचार, खाद्य एवं औषधि स्टोर तथा इलैक्ट्रानिक उद्योग। बैंकिंग तथा वित्तीय क्षेत्राों में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आधिपत्य हाल ही के वर्षों में वित्तीय पूंजी के क्रान्तिकारी उदय का उदाहरण है ।

कई बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ उनमें रोजगार प्राप्त लोगों की संख्या तथा उनकी वित्तीय स्थिति के कारण कई राज्यों से भी बड़ी हैं। यद्यपि इन बहुराष्ट्रीय कम्पनियों पर अधिकांशत: राज्य का नियंत्राण नहीं है तथापि उन्हें राष्ट्र-राज्यों की आवश्यकता है क्योंकि राज्य ही किसी क्षेत्रा में उनके प्रवेश का निर्णय लेता है। राज्य ही अपने क्षेत्रा में उन्हें सुविधाएँ उपलब्ध कराता है और व्यापार को सुचारू रूप से चलाने के लिए राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित कराता है। अत:, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ समकालीन वैश्विक अर्थव्यवस्था को आकार देने में राष्ट्र-राज्यों और अंतरराष्ट्रीय सरकारी संस्थाओं जैसे विश्व व्यापार संगठन, विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष का सहयोग लेती हैं।

भूमंडलीकरण के अंतर्गत औद्योगिक क्रान्ति के बाद के सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक संबंधों का सर्वाधिक मूल केन्द्रीकृत पुन: ढांचाकरण भी शामिल है। इसका मूल सिद्धान्त प्रतिपादक आर्थिक विकास तथा अनियंत्रित मुक्त बाजार की आवश्यकता के इर्द-गिर्द है। मुक्त व्यापार से निर्यात-आयातपरक अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलता है जिसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक उद्यमों में निजीकरण और अत्यधिक उपभोक्तावाद बढ़ता है तथा इन दोनों को जब वैश्विक विकास के साथ जोड़कर देखा जाता है तो वास्तव में यह पश्चिमी परिदृश्य को परिलक्षित करता है। नई अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संरचना के मूल सिद्धान्तों की यह भी मान्यता रहती है कि विविध संस्कृतियों के बावजूद सभी देश धीरे-धीरे सजातीय हो जाएंगें और उत्पादों तथा सेवाओं में सांस्कृतिक समरूपता प्राप्त कर लेंगे। अत:, मौजूदा आर्थिक भूमंडलीकरण का विकासशील देशों पर निरन्तर दबाव बना रहेगा कि वे अधिक आत्मनिर्भर बनाने वाली अर्थव्यवस्थाओं को बढ़ावा देने वाली स्थानीय परम्पराओं और कार्यक्रमों को त्याग दें।

यद्यपि भूमंडलीकरण के अंतर्गत विश्वभर में समरूपता की बात कही जाती है तथापि इस प्रक्रिया ने विश्व को दो समूहों में विभक्त कर दिया है। उत्तर के विकसित राष्ट्रों का तर्क है कि भूमंडलीकरण के लाभ अभ्यावर्तक हैं तथा विकसित और अल्पविकसित दोनों राष्ट्रों के लिए लाभकारी हैं। दूसरी ओर, दक्षिण के विकासशील देशों का भूमंडलीकरण के प्रति दृष्टिकोण आशंकापूर्ण है, भले ही यह पूर्ण निराशावाद का न हो। विकासशील देशों की आशंका का आधार न केवल उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति है अपितु उत्तर और दक्षिण के मध्य आर्थिक विभाजन भी है। भूमंडलीकरण के लाभों के असमान वितरण से यह अन्तर और बढ़ गया है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि भूमंडलीकरण के अंतर्गत अंतरराष्ट्रीय मुद्दों को बहुपक्षीय फोरमों के माध्यम से सुलझाने की बात कही जाती है तथापि वास्तविकता यह है कि ये फोरम वर्तमान में उत्तर के विकसित देशों द्वारा नियंत्रित हैं अथवा इन पर इनका वर्चस्व है। इन परिस्थितियों में, कमजोर देशों के हितों को या तो एक तरफ दरकिनार कर दिया जाता है या फिर कम महत्व दिया जाता है। यही कारण है कि विकासशील देश भूमंडलीकरण को अपनाने में हर सावधानी बरत रहे हैं ।

बहुपक्षीय संस्थानों जैसे विश्व व्यापार संगठन इत्यादि के उदय के उपरांत प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था खुली व्यवस्था हो गई है और वह व्यापार के वैश्विक साम्राज्य में शामिल हो गई है। कई देश जो एक दशक पहले तक राज्य के नियंत्राण और स्वामित्व पर विश्वास रखते थे, आज उन्होंने अपनी अर्थव्यवस्था का निजीकरण करना आरम्भ कर दिया है। दक्षिण एशिया के देश इसका अपवाद नहीं हैं। इनमें से अधिकांश देशों ने ९० के दशक के आरम्भ में ही अपनी अर्थव्यस्था का उदारीकरण शुरू कर दिया था। बीसवीं शताब्दी की आर्थिक उदारीकरण की नीतियों की प्रमुख विशेषताएँ-निजी स्वामित्व, व्यापार में राज्य की कम भूमिका, व्यापार के कम अवरोधों, कम करों तथा किसी अर्थव्यवस्था में सर्वाधिक कुशल वितरक के रूप में बाजार में सामान्य तौर पर विश्वास है।

आर्थिक उदारीकरण की दिशा में प्रत्यक्ष झुकाव के संबंध में राजनीतिक उपसाध्य पर यदि दृष्टिपात करें तो यह अत्यंत रोचक होगा। राष्ट्र-राज्य उभरती हुई वैश्विक व्यवस्था का सामना प्रमुखत: तीन स्तरों पर करते हैं - क्षेत्रीय, राष्ट्रीय तथा घरेलू। इसके लिए विभिन्न स्तरों पर नई संस्थाएँ, संरचनाएँ और संगठन बनाए जा रहे हैं। विश्व के विभिन्न हिस्सों के देश इकट्ठे हो रहे हैं और भूमंडलीकृत अवस्था का सामना करने के लिए क्षेत्रीय समूह बना रहे हैं क्योंकि राज्य के लिए अपने स्तर पर कार्य करना मुश्किल हो जाता है। कुछ भागों में मौजूदा क्षेत्रीय संस्थाओं को नई दिशा देने के प्रयास किए जा रहे हैं।

राष्ट्रीय सीमाओं को लांघकर नई राजनीतिक संरचनाएँ बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं। १९९२ के अंत में यूरोपीय संघ ने अपने १२ सदस्य देशों के लिए एकल बाजार की स्थापना की। इसके अतिरिक्त, आर्थिक सहयोग के आधार पर यह राजनीतिक और मुद्रा संघ बनाने का भी प्रयास कर रहा है। इसी प्रकार से सुदूर पूर्व की सरकारें क्षेत्रा में आर्थिक की ही तरह राजनीतिक सहयोग को बढ़ावा देने पर विचार कर रही हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका का कनाडा तथा मैक्सिको से पहले ही मुक्त व्यापार समझौता हुआ है वह जिसे बढ़ाकर दक्षिण अमरिका के साथ भी लागू करना चाहत है।

जैसाकि हम हाल ही के समय में सार्क देशों के अनुभव से जानते है कि इन देशों में मतभेदों, विशेषकर पाकिस्तान और भारत में शत्रुाता के बावजूद दक्षिण एशिया मुक्त व्यापार समझौता (SAFATA) संभव हो पाया है। यह समझौता मुक्त बाजार की दिशा में एक कदम है। भूमंडलीकरण के उतार-चढ़ाव का सामना करने के लिए सशक्त क्षेत्रीय संघ के रूप में उभरने की सार्क की इच्छा जनवरी, २००४ में इस्लामाबाद में सम्पन्न हुई शिखर बैठक में स्पष्ट रूप से सामने आई जहाँ मुद्रा संघ की परिकल्पना पर विचार किया गया।

फिर भी, राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्र-राज्यों में वैश्विक अर्थव्यवस्था के क्षेत्रा में स्वायतता में तुलनात्मक रूप से आई कमी से विशेषकर विकासशील देशों में लोगों की लोकतांत्रिाक इच्छाओं के संबंध में शंकाएँ उत्पन्न होती हैं। यहाँ लोग राज्य से अत्यधिक आशाएँ रखते हैं यद्यपि संसाधन एकत्रा करने और उनके वितरण में राज्यों की क्षमता कम है। चूंकि वैश्विक रूप से जुड़ने के लिए राष्ट्रीय सरकारों को निजीकरण, सार्वजनिक क्षेत्रा में विनिवेश, श्रमिकों की छंटनी जैसे कुछ प्रमुख नीतिगत निर्णय लेने पड़ते हैं, अत: इससे राज्य की भूमिका के संबंध में शंका होना स्वाभाविक है।

घरेलू स्तर पर विभिन्न आंदोलनों के कारण राष्ट्र-राज्यों को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। नागरिक राष्ट्रीय सरकारों को उन मुद्दों के लिए भी जवाबदेय मानते हैं जिन पर राज्य का कोई स्वायत नियंत्रण नहीं होता। फिर भी, नागरिकों की राष्ट्र-राज्य के प्रति दृढ़ निष्ठा और औपनिवेशवाद के विरूद्ध संघर्षों के कारण और सुदृढ़ हुई यह निष्ठा भूमंडलीकरण प्रक्रियाओं की तुलना में राष्ट्रीय सरकारों की स्वायतता में आई कमी के अनुसार कमजोर नहीं हुई है। हम यह कह सकते हैं कि विकासशील देशों के नागरिकों को अधिराष्ट्रीय संकायों को अपनाने की आशा करना सही नहीं होगा जबकि विकसित देशों के उभरते हुए अधिराष्ट्रीय संकायों जैसे यूरोपीय संघ इत्यादि के प्रति यह निष्ठा न के बराबर है। यह एक ऐसी चुनौती है जिसका राष्ट्र राज्य को वैश्विक तथा स्थानीय दबावों के बीच मध्यस्थता करने में लगातार सामना करना पड़ता है।

२२.३ राष्ट्र-राज्य और प्रभुसत्ता

प्रभुसत्ता की परिकल्पना आधुनिक विश्व और सर्वशक्तिमान राष्ट्र-राज्य के विकास में प्रमुख विचार रही है। आरम्भ में इसके अंतर्गत क्षेत्रा विशेष में व्यवस्था को कायम रखने के लिए कानूनी हिंसा लागू करने का राज्य का प्राधिकार आता था। धीरे-धीरे राष्ट्र-राज्यों ने कल्याण के कार्यों को जोड़ते हुए अपने क्षेत्रा की सीमाओं पर सम्पूर्ण अधिकार के दावेदार हो गए हैं जिसके कारण नागरिकों को अपनी समस्याओं के समाधान के लिए अपने राष्ट्र-राज्यों पर अत्यधिक आशाएँ रख ली हैं। शक्ति के उपयोग में निष्पक्षता रखने के कारण राष्ट्र-राज्य के कार्यों को वैद्यता मिलती है ।

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में भूमंडलीकरण के उदय के कारण राष्ट्र-राज्य संकट में हैं। स्वतंत्रा रूप से कार्य करने की इनकी क्षमता पर वैश्विक स्तर पर बाहय शक्तियों और स्थानीय स्तर पर आंतरिक शक्तियों का दबाव पड़ा है। राष्ट्र-राज्य भूमंडलीय एकता और स्थानीय विघटन की शक्तियों के बीच फंसे हैं। अधिकांश लोगों के जीवन में संबंधों में सर्वप्रमुख संरचनात्मक परिवर्तन राष्ट्र-राज्य के प्रति संबंधों के कारण आए हैं। लोगों का अब तक राज्य के साथ अधिकार का संबंध था, जो अब नहीं रहा क्योंकि राज्य न तो अपने स्तर पर भूमंडलीय शक्तियों के साथ बातचीत करने में और न ही अलग-अलग पहचान के साथ रह रहे नागरिकों में एकता की भावना लाने में सक्षम है। विकासशील देशों पर यह अधिक लागू होता है क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में इन देशों में राज्य की अक्षमता अधिक स्पष्ट है। नागरिक नए संगठनों की खोज में हैं जो विभिन्न रूपों में उन्हें पहचान दिला सकें। इसके बहु पक्षीय परिणाम सामने आ रहे हैं। स्थानीय समुदाय, जो कि संसाधनों में बड़े हिस्से की मांग कर रहे हैं, कल को उन्हें यह अनुभव हो सकता है कि उनका हित राष्ट्र-राज्यों के अधिकार कम करने या फिर बाद में उनका ध्वंस करने में है।

हाल ही के वर्षों में हम देख रहे हैं कि उभरती हुए स्थानीय शक्तियाँ अपने मुद्दे भूमंडलीय स्तर पर उठाने के प्रयास कर रही हैं ताकि राष्ट्र-राज्य पर दबाव बनाया जा सके। हाल ही की विश्व शिखर बैठकें इस तथ्य को स्पष्ट करती हैं कि स्थानीय समुदाय वैश्विक इकाईयाँ बनना चाहते हैं। मानवाधिकार समूहों का विएना शिखर सम्मेलन, नारी समूहों का बीजिंग, पारिस्थितिकीय समूहों का रियो सम्मेलन, रंग भेद के विरूद्ध डर्बन सम्मेलन अथवा विश्व सामाजिक फोरम सभी संजातीय, जातीय, लिंग, पारिस्थितिकीय मुद्दों की भांति अपने राष्ट्रों से बाहर स्थानीय समुदायों को इकट्ठा कर रहे हैं। वे सामाजिक न्याय के मुद्दे को राष्ट्र-राज्यों के अधिकार क्षेत्रा से ऊपर उठा देते हैं और इन स्थानीय समूहों को भूमंडलीय प्रक्रियाओं के साथ जोड़ देते हैं। उदाहरणतया, किसी देश में मानवधिकार का इतिहास अंतरराष्ट्रीय ऋणदाता एजेन्सियों द्वारा ऋण अथवा अनुदान राशि के संवितरण में प्रमुख मुद्दे के रूप में उभरा है। इससे यह पता चलता है कि किस प्रकार से राष्ट्र-राज्य घरेलू तथा विश्वव्यापी शक्तियों, दोनों के दबाव में है।

बोध प्रश्न १

नोट : अपने उत्तर के लिए कृपया दिए गए स्थान को उपयोग में लाएं। अपने उत्तर की जांच इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें ।

१) वर्तमान विश्व व्यवस्था में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की भूमिका पर टिप्पणी कीजिए?

.....

.....

.....

२) भूमंडलीकरण के संदर्भ में राष्ट्र-राज्य की प्रभुसत्ता कैसे प्रभावित हुई है?

.....

.....

.....

.....

२२.४ दक्षिण एशियाई राज्य एवं भूमंडलीकरण

मौजूदा अंतरराष्ट्रीय प्रणाली पहले की तुलना में निश्चित तौर पर कम राज्यपरक है परन्तु "भूमंडलीकरण के शुभ संदेश" अथवा "राज्य के अंत" का दावा करना भी जल्दबाजी होगी। यद्यपि शीत युद्ध के बाद का विश्व राज्य परक नहीं है तथापि यह राज्य रहित अथवा राज्य मुक्त व्यवस्था नहीं है। विश्व के विभिन्न भागों में अलग-अलग गति, सघनता तथा सीमा तक अधिराष्ट्रीय स्तर पर क्षेत्रीय एकता की प्रक्रिया चल रही है। यूरोपीय संघ सर्वाधिक समेकित संस्था है जबकि सार्क को अभी लम्बा सफर तय करना है।

२२.४.१ दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्य को चुनौतियाँ

दक्षिण एशिया के राष्ट्र राज्य को स्थानीय, क्षेत्रीय और वैश्विक संदर्भ से उत्पन्न हुई विभिन्न शक्तियों की गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें से प्रमुख हैं- अभेदवाद आंदोलन तथा समुदाय संबंधी तर्क, क्षेत्रीय आंदोलन और वैश्विक एजेन्सियाँ। इनमें से प्रत्येक राष्ट्र-राज्य का स्थान लेना अथवा स्वतंत्रा रूप से कार्य करना चाहती है। इस क्षेत्रा में राष्ट्र-राज्य किस दिशा में जा रहा है, यह जानने के लिए इन शक्तियों के तर्कों को सराहना महत्वपूर्ण होगा।

अधिराष्ट्रीय क्षेत्रा द्वारा राष्ट्र-राज्य का स्थान लेने का प्रबल दावेदार होने के कई कारण हैं। अधिराष्ट्रीय क्षेत्रा आर्थिक, प्रौद्योगिकीय तथा नीतिगत चुनौतियों का सामना अधिक सक्षमता से कर सकता है। जहाँ-जहाँ क्षेत्राीय एकता प्रबल हुई है, वहाँ-वहाँ स्थानीय विवाद कम हुए हैं, सैनिक व्यय कम हुआ है अथवा इसे सीमाओं में रखा गया है और आर्थिक निष्पादन बेहतर रहा है। इसके अतिरिक्त, अधिराष्ट्रीय क्षेत्रा उप-राष्ट्रीय पहचान समूहों को राष्ट्र राज्य की तुलना में अधिक विश्वास से मान्यता दे सकते हैं। यदि राष्ट्र प्राकृतिक न होकर काल्पनिक है, तो क्षेत्रा की कल्पना भी की जा सकती है अलबत्ता विभिन्न आधारों पर। यह राज्य की तुलना में अधिकारों को सुरक्षित रख सकता है जैसा कि राष्ट्रवाद उग्र राष्ट्रवाद का रूप ले लेता है। इन कारणों के अतिरिक्त वर्तमान प्रक्रिया में क्षेत्राीय संबंधों की प्रक्रिया अधिक सुदृढ़ हो रही है। इन कारणों से क्षेत्रा को राष्ट्र-राज्य का प्राकृतिक प्रारूप माना जा सकता है ।

तथापि, क्षेत्रावाद के उदय से राष्ट्र-राज्य इकाईयाँ कमजोर नहीं हो सकती। दक्षिण एशिया में क्षेत्राीय सहयोग की अत्यधिक संभावना के बावजूद क्षेत्रा में राष्ट्र-राज्यों के भिन्न-भिन्न हित होने के कारण इसकी क्षेत्राीय पहचान नहीं बन पा रही है। दक्षिण एशिया में क्षेत्राीय पहचान बनने की क्षमता प्रत्यक्ष स्पष्ट है। हाल ही के वर्षों में दक्षिण एशियाई राज्यों के समक्ष संजातीय, जातीय, लिंग तथा क्षेत्रा के आधार पर समुदायों को इकट्ठा करने की चुनौती है। उदाहरण के तौर पर, बांध बनने, खनन इत्यादि के कारण बड़ी संख्या में जनजातीय जनसंख्या का सीमान्तकरण और विस्थापन जैसे मुद्दे पारिस्थितिकीय आंदोलनों के रूप में इन राज्यों द्वारा अपनाए गए विकास मॉडलों पर गंभीर रूप से प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं। देश में अपनी पहचान की खोज के रूप में चलाए जा रहे दलित आंदोलन अक्सर उच्च जातियों के वर्चस्व वाले राज्य की वैद्यता पर ही प्रश्न चिन्ह लगाते हैं। इसी प्रकार से सत्ता तथा राष्ट्र-राज्य में लिंग आधार पर भागीदारी राज्य के मूल ढांचे के लिए चुनौती है। यह पुरूष प्रधान अर्थात पितृवाद पर आधारित राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह है ।

ये सब उदाहरण राष्ट्र-राज्यों के नागरिकों की निष्ठा के एकमात्रा दावेदार की स्थिति को समाप्त कर रहे हैं। उनका यह मत है कि सदस्य की प्राथमिक निष्ठा अपने समुदाय के प्रति होती है क्योंकि किसी व्यक्ति के ''स्व'' का निर्माण समुदाय तथा इसकी मान्यताओं और परम्पराओं में और इनके माध्यम से होता है तथा इनका विकास समुदाय के परिणामस्वरूप ही होता है। अक्सर यह सत्य होता है कि संसाधनों अथवा सत्ता के बंटवारे में इन समुदायों के दावों में विवाद उत्पन्न हो जाता है। समुदायों के मध्य अथवा इनके भीतर विवाद होने पर कौन मनमानी कर सकता है? समुदायों से परे मुद्दे पर स्वतंत्रा विचार करने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त समुदायों की सीमाओं में अत्यधिक कमियाँ है तथा उनकी निरन्तर पुन: खोज होती रहती है। हिन्दुत्व अथवा उम्माह अथवा धार्मिक आधार पर किसी भी समुदाय का उदाहरण हमारे सामने है। इस प्रकार के समुदाय की सीमाएँ स्थिर नहीं हैं और इनमें प्राय: परिवर्तन आते रहते हैं। अपने भीतर की भिन्नताओं की निरन्तर उपेक्षा करते हुए ये सदैव समुदायों के बड़े ब्लॉकों के निर्माण के लिए तत्पर रहते हैं। इसके साथ ही वे जीवन की मान्यताओं तथा तरीकों की बहुपक्षीयता को पहचानने अथवा स्वीकार करने से इन्कार करते हैं। ऐसी अवस्था में राज्य ही विवादपूर्ण राज्यों के विवाद को सुलझा सकता है। अत:, राष्ट्र-राज्य के किसी विकल्प के रूप में समुदाय के संबंध में तर्क अब तक लगभग खोखले हैं। इसके अतिरिक्त, राष्ट्र-राज्य की मध्यस्थता के बिना भूमंडलीय स्तर पर बातचीत करना समुदायों के लिए असंभव सा है।

राज्यों के अतिरिक्त क्या कोई ऐसी भूमंडलीय प्रणाली है जो राष्ट्र-राज्य का विकल्प बन सके? आज पारिस्थितिकीय संतुलन, आतंकवाद, प्रदूषण, निरस्त्रीकरण इत्यादि कई ऐसे मुद्दे हैं जिनका समाधान केवल भूमंडलीय स्तर पर ही निकाला जा सकता है। इस प्रकार के अंतरराष्ट्रीय संगठनों की संख्या पहले ही बढ़ रही है तथा इन संगठनों के कार्यों और भविष्य में आशाओं में भी वृद्धि हो रही है। इसके साथ-साथ मानवाधिकार और लोकतंत्रा जैसे कुछ मुद्दों पर व्यापक सहमति बनी है। भूमंडलीय अथवा विश्व प्रणाली के समर्थक वैश्विक प्रणाली के प्रमाण के रूप में राज्यों में संस्थानों के नेटवर्क

और प्रक्रियाओं की कार्यशीलता की ओर इंगित करते हैं, भले ही यह शुरूआती स्तर पर क्यों न हो। अत: वे भूमंडलीकरण के न केवल आर्थिक अपितु राजनैतिक क्षेत्रा में भी होने के पक्षधर हैं।

तथापि, राष्ट्र-राज्य के विकल्प के रूप में भूमंडलीय प्रणाली अथवा सरकार संभव नहीं है, और यदि हो भी तो यह वांछनीय नहीं है। वास्तव में बढ़ती हुई स्वतंत्राता तथा कार्यात्मक सहयोग ने राष्ट्र-राज्य को कमजोर बनाने की अपेक्षा सदैव इसे सुदृढ़ ही बनाया है। राष्ट्र-राज्य का महत्व न केवल पहचान दिलाने में अपितु संकट के क्षणों में भी है। यद्यपि विश्व प्रणाली एक एकीकृत विश्व है तथापि यह कई विरोधाभासों से पूर्ण है। उत्तर के अधिक विकसित देशों के वर्चस्व वाली विश्व प्रणाली कम विकसित देशों तथा उनमें से भी निचले अनुभागों को सुरक्षा उपलब्ध नहीं करा सकती।

२२.४.२ दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्य की संबद्धता

पिछले २०० वर्षों से सैद्धान्तिक विभिन्नताओं के बावजूद राष्ट्र-राज्यों ने नागरिकों को संगठित करने और राज्य के साथ स्वयं को जोड़ने की सामान्य सोच को ढाला है। राष्ट्र-राज्य न केवल सामूहिकता की संगठित अभिव्यक्ति है अपितु यह कई बार कम से कम कुछ सीमा तक संबंधों में परिवर्तन लाने, आर्थिक विकास और लोकप्रिय सशक्तिकरण का सक्रिय माध्यम रहा है। दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्य में राष्ट्रीय आंदोलन की स्मृतियाँ हैं और पुराने युग का इतिहास छुपा है। संजातीय विवादों के कारण दक्षिण एशिया में राज्य के अधिकार की स्थिति में परिवर्तन आने के बावजूद दक्षिण एशियाई देशों के लोग अपने राज्य की संस्कृति से जुड़े हैं। उप-महाद्वीप में खेलों से लेकर सैनिक विवादों तक लोगों की भावनाएँ उमड़ पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त, हमारी परिस्थितियों में बाह्य वर्चस्व और आक्रमण का सामना राष्ट्र-राज्य ही कर सकता है, भले ही वह अपूर्ण क्यों न हो। राज्य की यही क्षमता संस्कृति और राजनीतिक जीवन के लिए स्वायतता सुनिश्चित कर सकती है तथा कम से कम अर्थव्यवस्था का सीमित विनियमन कर सकती है।

इसके अतिरिक्त, संगठनात्मक रूप में राष्ट्र-राज्य के भीतर तथा बाहर असंख्य संबंध और पहचानें समेटने की क्षमता है। राष्ट्रवादी सिद्धान्तवाद के कई रूप हो सकते हैं। इस प्रकार की लोचशीलता किसी भी संकीर्णता से बनी पहचान में नहीं है और न ही अति राष्ट्रीय पहचान के काल्पनिक विचार में है जो कि आम नागरिक की कल्पना से बहुत दूर है।

बोध प्रश्न २

नोट : अपने उत्तर के लिए कृपया दिए गए स्थान को उपयोग में लाएँ। अपने उत्तर की जांच इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

१) दक्षिण एशिया में राज्य-राज्य के समक्ष क्या प्रमुख चुनौतियाँ हैं?

.....

.....

.....

.....

२) क्या आपके विचार में उभरती हुई विश्व प्रणाली राष्ट्र-राज्य का विकल्प है?

.....

.....

.....

.....

२२.५ दक्षिण एशिया में क्षेत्रवाद की गत्यात्मकता

दक्षिण एशिया की जनसंख्या १.२ बिलियन है तथा विश्व की जनसंख्या का यह २० प्रतिशत से अधिक है। यहाँ का सकल घरेलू उत्पाद ३०९ डालर प्रति व्यक्ति है जो कि विकासशील देशों के औसत का एक तिहाई तथा औद्योगिक विश्व का २० प्रतिशत है। इस प्रकार से दक्षिण एशिया वास्तव में विश्व का ''सर्वाधिक वंचित क्षेत्रा'' है। दक्षिण एशिया का अन्य क्षेत्रों की तुलना में न केवल आय का स्तर अपितु मानव संसाधन का स्तर भी निम्न है। इसका एक कारण भारत तथा पाकिस्तान के मध्य अस्त्रा-शस्त्रों की होड़ के कारण तथा श्रीलंका में चल रहे संजातीय विवाद के कारण अपेक्षाकृत सैनिक व्यय का उच्च स्तर होना है।

लोकप्रिय होती सामान्य समस्याओं को सुलझाने के लिए क्षेत्राीय दृष्टिकोण की प्रवृत्ति के साथ दक्षिण एशिया के देशों ने १९७० के दशक के अंतिम वर्षों में क्षेत्राीय समूह गठित करने का प्रयास आरम्भ कर दिया। नई संस्था के ढांचे और कार्यकलापों की रूपरेखा तैयार करने के लिए सरकारी स्तर पर कई बैठकों के उपरांत १९८५ में दक्षिण एशियाई क्षेत्राीय संघ की स्थापना हुई। शीघ्र ही संस्था का नाम बदलकर दक्षिण एशियाई क्षेत्राीय सहयोग संघ रख दिया गया ताकि इसे औपचारिक पहचान दी जा सके।

नई क्षेत्राीय संस्था की प्रमुख विशेषताएँ थीं - भारत की केन्द्रीयता तथा सदस्य देशों की असमान आर्थिक स्थिति के मद्देनजर अन्तर्निभरता अथवा ''संतुलित अन्तर्निर्भरता'' पर बल; विवादास्पद तथा द्विपक्षीय मुद्दों से बचना, व्यापार एवं सुरक्षा से जुड़े संवेदनशील क्षेत्रों की अपेक्षा कमजोर क्षेत्रों पर बल। चूंकि सदस्य राज्यों को विवादास्पद मुद्दों से बचना चाहिए, अत: आरम्भिक वर्षों में सार्क का प्रमुख ध्यान स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति, संचार, कृषि, ग्रामीण विकास इत्यादि क्षेत्रों पर था। १९९० के दशक में उदारीकरण और बाजार अर्थव्यवस्था की नीतियाँ अपनाकर सार्क के लगभग सभी सदस्य देश भूमंडलीकरण अर्थव्यवस्था का हिस्सा बन रहे हैं। उन्होंने न केवल १९९३ में दक्षिण एशियाई प्रिफरेंशियल अरेंजमेंट पर हस्ताक्षर किए अपितु जनवरी, २००४ में इस्लामाबाद में आयोजित बारहवें सार्क सम्मेलन में मुक्त व्यापार क्षेत्रा(SAFTA) में प्रवेश के लिए समझौते पर भी हस्ताक्षर किए।

२२.५.१ भूमंडलीकरण - क्षेत्रीय सहयोग - दक्षिण एशिया में राष्ट्र-राज्य

भूमंडलीकरण के संदर्भ में दक्षिण एशिया क्षेत्रा के देशों में क्षेत्राीय सहयोग की तीन मूल विवशताएँ हैं - क्षेत्रा की सुरक्षा का पर्यावरण, आर्थिक सहयोग तथा सामान्य ऐतिहासिक विरासत।

शीत युद्ध की समाप्ति पर समाजवादी ब्लॉक के विघटन और सत्ता संतुलन के पुराने विचारों के घिस-पिट जाने जैसे क्रान्तिकारी परिवर्तनों से बदलते हुए दक्षिण एशियाई सुरक्षा पर्यावरण पर सहगामी प्रभाव नही पड़े। दक्षिण एशिया में सुरक्षा तथा क्षेत्राीय सहयोग की गत्यात्मकता पर काफी हद तक भारत और पाकिस्तान के संबंधों का प्रभाव पड़ा है। पुराने आपसी खतरे की अवधारणाएँ तथा पुरानी सोच भारत और पाकिस्तान के नीति निर्माता अभिजात्य वर्ग के मस्तिष्क में अभी भी विराजमान है। अत:, द्विपक्षीय विश्व राजनीति का ''एक पक्षीय'' विश्व व्यवस्था में अचानक परिवर्तन भी दो प्रतियोगी क्षेत्राीय शक्तियों - भारत और पाकिस्तान - को अपना रक्षा बजट कम करने अथवा परमाणु हथियारों सहित अन्य संवेदनशील हथियार इकट्ठे करने से नहीं रोक सका। वास्तव में, क्षेत्रा में संयुक्त राज्य की उपस्थिति से सदैव दक्षिण एशिया के सुरक्षा पर्यावरण पर अस्थिरता का प्रभाव पड़ा है ।

भूमंडलीय परिप्रेक्ष्य से दक्षिण एशिया विलक्षण क्षेत्रा है। इसकी समस्याओं और विवादों की अपनी गत्यात्मकता है तथा यदि सभी नहीं तो भी इनमें से अधिकांश समस्याएँ इसके इतिहास, भौगोलिक-राजनीति, अर्थव्यवस्था और परिस्थिति विज्ञान का परिणाम हैं। भूमंडलीय विकास की प्रमुख धारा से कुछ हद तक कटे रहने के कारण दक्षिण एशिया आज भी अन्य शक्तियों और क्षेत्रों के साथ संबंधों में कम सक्रिय है। तथापि, भारत की आर्थिक उदारीकरण की नीति ने इसे अंतरराष्ट्रीय

भूमंडलीय विकास का अटूट अंग बना दिया है जिससे १९९० के दशक में यह अंतरराष्ट्रीय पटल पर उभर कर आया है। संयुक्त राज्य भारत को अपने उत्पादों और सेवाओं के लिए संभावित बाजार के रूप में देखता है। परिणामस्वरूप, यद्यपि अमरीका भारत के परमाणु शक्ति बनने पर नाखुश है तथापि यह अपने दीर्घावधि आर्थिक हितों के कारण भारत को साथ लेकर चलना चाहता है।

यह एक अन्य पहलू है कि दूसरे दक्षिण एशियाई देश संयुक्त राज्य को और दक्षिण एशियाई नीतिगत संतुलन बनाने में इसके प्रभाव को कैसे देखते हैं। अन्य दक्षिण एशियाई देश अपनी आंतरिक समस्याओं में अत्यधिक उलझे हैं तथा परमाणु हथियारों की रोक अथवा शांति और अन्य देशों के आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप न करने पर औपचारिक टिप्पणियाँ करते रहते हैं। छोटे देश भारत अथवा अन्य शक्तियों की तुलना में शीत युद्ध की युक्तियों से वंचित महसूस करते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर वे औद्योगिकृत पश्चिम और जापान का अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं में तथा द्विपक्षीय सहयोग देने में वर्चस्व होने के कारण उन पर निर्भर हैं। जापान दक्षिण एशियाई देशों को सहायता उपलब्ध कराने वाला अग्रणी देश है, उसके बाद यूरोपीय देश इस दिशा में प्रमुख स्थान रखते हैं।

पिछले दो दशकों से अंतर्शासकीय आर्थिक संस्थाएँ - अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक तथा विश्व व्यापार संगठन ही विकासशील देशों की आर्थिक नीतियाँ तय कर रहे हैं। लक्ष्यों की प्राप्ति, नीति निर्माण, उपकरणों के उपयोग तथा संस्थाओं के विकास के संबंध में इन संस्थाओं का मानीटर तथा दिशानिर्देश रहता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अधिकांश विकासशील देशों ने अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक से ऋण लिया हुआ है जिसके कारण वे कई शर्तों की प्रणाली का हिस्सा बन जाते हैं। इन शर्तों के पैकेज को सामान्यतया ''वांशिंगटन सर्वसम्मति'' कहा जाता है जिसमें वृहत आर्थिक नीतियाँ, विशेषकर बजट घाटा सकल घरेलू उत्पाद का ३ प्रतिशत तक रखने, विदेशी व्यापार उदारीकरण एवं विदेशी प्रत्यक्ष निवेश नीतियाँ, निजीकरण, बाजार की अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका निर्धारित करने और इन सबसे बढ़कर आर्थिक क्षेत्रा में राज्य का सीमान्तकरण इत्यादि नीतियाँ शामिल हैं।

अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक ने १९९० के दशक में पहला महत्वपूर्ण कदम तब उठाया जब इन्होंने अपने मूल अधिदेश के अतिरिक्त अभिशासन की प्रकृति से संबंधित परामर्शदात्राी भूमिका को भी अपनाया। ये संस्थाएँ अपने सहयोग वाली परियोजनाओं के सफल कार्यान्वयन के लिए उपयुक्त राजनीतिक पर्यावरण सुनिश्चित करने पर बल दे रही हैं। दक्षिण एशियाई देश इसका अपवाद नहीं हैं। वे भी पिछले कुछ वर्षों से इन संस्थाओं के सशक्त प्रभाव में हैं। इस प्रकार से, इन देशों के राजनीतिक सुधारों में इनका हस्तक्षेप जारी है।

तथापि, अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाओं के दिशा-निर्देश में दक्षिण एशिया के देशों द्वारा चलाए गए सुधार कार्यक्रमों से वास्तव में आर्थिक विकास की दर में कोई तीव्रता नहीं आई है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (UNDP) द्वारा प्रकाशित दक्षिण एशिया में भूमंडलीकरण एवं मानव विकास पर रिपोर्ट में पिछले डेढ़ दशक में दक्षिण एशियाई अर्थव्यवस्थाओं में विकास दर में अत्यधिक कमी नहीं पाई गई । रिपोर्ट में बताया गया है कि बांग्लादेश और नेपाल में विकास की दर मामूली रही, श्रीलंका के मामले में १९९० के दशक के अंतिम वर्षों में यह डगमगा गई जबकि पाकिस्तान में इसमें कमी आई। केवल भारत ही ६ प्रतिशत से अधिक विकास दर प्राप्त कर पाया है।

इस अवस्था के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारणों में से एक यह है कि सुधारों का क्रम उचित नहीं रहा है। उदाहरण के तौर पर किसी भी दक्षिण एशियाई देश ने शुल्क कम किए बिना कर के आधार को नहीं बढ़ाया। इसका परिणाम यह हुआ है कि सुधार प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण राजस्व सरकार को प्राप्त नहीं हो सका। इसी प्रकार से कृषि क्षेत्रा में बाजार सुधारों को लाए बिना इसके संरक्षण के लिए पर्याप्त तरीके नहीं अपनाए गए जिसका परिणाम यह हुआ कि इस क्षेत्रा के देशों में कृषि क्षेत्रा का निष्पादन अच्छा नहीं रहा।

यह उल्लेखनीय है कि मानव विकास रिपोर्ट में दक्षिण एशियाई देशों में कुछ हद तक आर्थिक परस्पर-निर्भरता की सिफारिश की गई है। इसमें कहा गया है कि सशक्त क्षेत्राीय व्यापार ब्लॉक बनाने से न केवल सदस्य देशों में आर्थिक सहयोग को बढ़ावा मिलेगा अपितु भूंमडलीकृत व्यवस्था

में समूह की प्रतियोगी स्थिति में भी सुधार आएगा। इससे महत्वपूर्ण राजनीतिक सौहार्दता का मार्ग प्रशस्त होगा और साथ ही ऐसी अवस्था तैयार करने में सहायता मिलेगी जिससे कि भूमंडलीय स्तर पर बातचीत में वे सामूहिक रूप से अपना पक्ष रख सकेंगे।

विश्व व्यापार संगठन में लोकतांत्रिक तरीके से निर्णय लिए जाने के बावजूद इस प्रक्रिया में विकासशील देशों की भागीदारी महत्वपूर्ण नहीं है। अत: दक्षिण एशियाई क्षेत्रा के देशों के लिए अनिवार्य है कि वे गठबंधन के रूप में उभरें ताकि मौजूदा जनमत दृष्टिकोण सहित विश्व व्यापार संगठन के वर्तमान प्रावधानों में परिवर्तन लाए बिना निर्णय प्रक्रिया को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया जा सके।

कमजोर राज्य गठबंधन को सहयोग का माध्यम बनाने तथा सशक्त देशों को प्रभावित करने का कार्य कैसे किया जाए, यह अंतरराष्ट्रीय संबंधों में चर्चा का विषय है। यहां यह उल्लेखनीय है कि गठबंधन का निर्माण सतत प्रक्रिया है। वास्तव में, विकासशील देशों द्वारा अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मामलों में अपने हितों को बढ़ावा देने के लिए गठबंधन निर्माण कोई नई बात नहीं है। १९६० के दशक में विकासशील देश इकट्ठे हुए और यह एकता १९७० के दशक में भी जारी रही। इस समूह को बाद में समूह-७७ कहा गया। इस समूह में भी विभिन्न अंतरराष्ट्रीय फोरमों पर भी इकट्ठे होकर अपने मुद्दे रखने से पहले कई व्यापारिक समूह बनाए गए ताकि वे समूह-७७ के अलग-अलग समूहों की आवश्यकताओं को प्रस्तुत कर सकें, किन्तु समूह-७७ की रणनीति को अप्रभावी बताकर इसकी आलोचना की गई है।

१९८० के दशक के आरम्भिक वर्षों में कुछ चुने हुए विकासशील देशों ने वास्तव में अनौपचारिक तथा औपचारिक संगठन बनाए ताकि व्यापार से संबंधित बौद्धिक सम्पदा अधिकारों, व्यापार संबंधी निवेश के तरीकों और बहुपक्षीय व्यापार संधि-वार्ताओं के आठवें दौर में कार्यसूची मद के रूप में सेवाओं में व्यापार जैसे नए मुद्दों को न लाया जा सके। यद्यपि वे अपने उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर सके, तथापि वे लम्बे समय तक न सही पर फिर भी संधिवार्ता के लिए इन मुद्दों के शामिल करने को स्थगित करवाने में सफल रहे।

विश्व व्यापार संगठन में सहयोग पर निरन्तर बल दिया गया। सार्क के सदस्य देशों पर विश्व व्यापार संगठन के निर्णयों के दूरगामी परिणामों के मद्देनजर यह निर्णय लिया गया कि सामान्य चिन्ता के क्षेत्राों में इन मुद्दों पर अपने निर्णयों को समन्वित करने के लिए सार्क देश प्रयास करें ताकि विकासशील देशों के हितों को संरक्षित किया जा सके और इन्हें बढ़ावा दिया जा सके ।

अत: इस पेचीदा स्थिति से उबरने का एक ही रास्ता है - दक्षिण एशियाई देशों का प्रभावी गठबंधन तैयार करना और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मामलों के नए मुद्दों पर संधिवार्ताओं की बढ़ती हुई चुनौतियों का सामना करने के लिए क्षमता निर्माण। ऐसा प्रतीत होता है कि सार्क देशों ने सशक्त गठबंधन की आवश्यकता अनुभव की है। यह १९९० के दशक के दौरान सार्क देशों के अध्यक्षों के सभी घोषणा-पत्राों से स्पष्ट होता है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि राष्ट्र-राज्य और भूमंडलीकरण के मध्य द्विविभाजन के लिए विभिन्न श्रेणियों के अंतरराष्ट्रीय कारकों के मध्य अधिक स्वायतता तथा जवाबदेही अनिवार्य होगी। यदि विश्व व्यापार संगठन अथवा मानवाधिकार, लैंगिक मुद्दों, पारिस्थितिकीय समस्याओं अथवा अंतरराष्ट्रीय वित्तीय एजेन्सियों जैसे विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष जैसे बहुपक्षीय संगठन कम विकसित देशों की अवस्थाओं पर विचार करने के लिए अधिक पक्षधर नहीं हैं तो भूमंडलीय एकता न तो संभव है और न ही वांछित है। इसी प्रकार से, दक्षिण एशिया के राष्ट्र-राज्यों के समक्ष भूमंडलीय आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था के साथ समझौता करने का विकल्प महत्वपूर्ण हैं ताकि हम यह न मानने लग जाएँ कि ''राष्ट्र-राज्य मृत है: राष्ट्र-राज्य की जय हो'' क्योंकि ''न तो सुपर-राज्यों और न ही सभी राज्यों के अंत का युग आया है।''

दूसरे, दक्षिण एशियाई क्षेत्रावाद उभरती हुई भूमंडलीय व्यवस्था से दक्षिण एशिया क्षेत्रा के राज्यों को प्राप्त लाभों पर आश्रित हैं। पिछड़ेपन के कारण इन देशों को क्षेत्राीय समूह के रूप में एकत्रा होना

होगा ताकि भूमंडलीय एकता में असमानता की अवस्था का सामना किया जा सके। तथापि, यह उल्लेखनीय है कि क्षेत्रीय सहयोग की अवस्थाओं को बढ़ावा देने के लिए दक्षिण एशिया के राज्यों को अपनी स्वायत्तता लाने के प्रयास करने होंगे। यह आवश्यक है क्योंकि इससे उनके क्षेत्रों में अतिसंवेदनशील भागों के हित अधिक विकासशील देशों के हितों के वर्चस्व वाली भूंमडलीय व्यवस्था की अपेक्षा राष्ट्र-राज्य के अंतर्गत सुरक्षित रह पाएंगे।

अंत में, भूमंडलीकरण किसी भी रूप तथा सघनता में राष्ट्र-राज्यों तथा क्षेत्रों में मौजूद हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि भूमंडलीय प्रक्रियाओं के साथ राष्ट्र-राज्यों का जुड़ना अपरिहार्य हो गया है। तथापि, इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि भूमंडलीय व्यवस्था में राष्ट्र-राज्य की स्वायत्तता उसके पूर्ण रूप से अधीन हो। विश्व के विकासशील भागों में राष्ट्र-राज्यों को क्षमता निर्माण करना होगा ताकि सशक्त क्षेत्रीय समूह बनाकर अथवा सहयोग के बड़े ब्लॉक बनाकर भूमंडलीकरण की विवशताओं के साथ समझौता किया जा सके। इस प्रकार के प्रयासों का अर्थ भूमंडलीय व्यवस्था के साथ जुड़ना नहीं अपितु अपनी स्वायत्तता को बनाए रखते हुए इसमें हिस्सेदारी के लिए भरसक प्रयास करना।

बोध प्रश्न ३

नोट : i) अपने उत्तर के लिए कृपया दिए गए स्थान को उपयोग में लाएँ।

ii) अपने उत्तर की जांच इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

१) वाशिंगटन सर्वसम्मति (Washington Consenses) क्या है?

.....

.....

२) १९९० के दशक में दक्षिण एशियाई देशों द्वारा चलाए गए आर्थिक सुधारों का क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

२२.६ सारांश

इस अध्याय मे हमने भूमंडलीकरण के विभिन्न अर्थों के बारे में जाना। हमने विभिन्न स्तरों पर भूमंडलीकरण के रूपों के बारे में भी पढ़ा। इस अध्याय में हमने यह भी जाना है कि भूमंडलीय तथा स्थानीय शक्तियों के दबावों के कारण राष्ट्र-राज्य गहरे दबाव में है।

सबसे महत्वपूर्ण बात हमने यह पढ़ी कि भूमंडलीकरण की प्रक्रिया एक समान नहीं है जो सभी देशों के लिए समान हो। दूसरी ओर, भूमंडलीकरण के संदर्भ में विकसित तथा कम विकसित देशों का अनुभव पूरी तरह से भिन्न है। हमने यह भी देखा है कि भूमंडलीय व्यवस्था के अनुरूप चलने के विकासशील देशों के प्रयास उल्लेखनीय तथा सावधानीपूर्वक किए जाने चाहिए। साथ ही दक्षिण एशियाई क्षेत्रा में राष्ट्र-राज्यों के समक्ष आने वाली चुनौतियों की जाँच की गई तथा भूमंडलीय व्यवस्था के अनुरूप चलने के लिए किए जाने वाले प्रयासों पर चर्चा की गई।

२२.७ कुछ उपयोगी पुस्तकें

बेहरा नवीन चड्डा (२००१) स्टेट फोरमेशन प्रोसेसिज़, वीक स्टेट्स एंड सस्टेनेबल डेवलपमेंट इन साउथ एशिया, *जर्नल ऑफ पीस,* सिक्योरिटी एंड डेवलपमेंट, खंड-VII।

ह्विस्ट, पी. एवं जी. थाम्पसन (१९९६), *ग्लोबलाइज़ेशन इन क्वशचन,* कैम्ब्रिज, पोलिटी।

इस्पहानी महनाज़ (२००२), ''आल्टरनेटिव साउथ एशियन यूचर्स'', *सेमिनार, स ५१,* सितम्बर।

मुनी, एस डी (सम्पादन) (१९९४) *अंडरस्टैंडिंग साउथ एशिया,* साउथ एशियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली।

न्यूवैल पीटर (२००३), ग्लोबल चैलेंजिस टू द यूचर स्टेट, *सेमिनार, सं ५०३,* जुलाई।

सेनगुप्ता, चन्दन (२००१) "कन्सेप्चुअलाइज़िंग ग्लोबलाइज़ेशन: इश्यूज एंड इम्पलीकेशन्स,' *इकोनॉमिक एंड पोलीटिकल वीकली,* १८ अगस्त, पृष्ठ ३१३७-४३।

विनायक अचिन (सम्पादन) (२००४) *ग्लोबलाइज़ेशन एंड साउथ एशिया; मल्टी डाइमेनशन्ल पर्सपेक्टिव्स*। मनहोर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

२२.८ बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न १

१) बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ अपनी जन-शक्ति तथा वित्तीय संसाधनों के साथ अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में अहमियत रखती हैं। वे अधिकांशत: राज्य के नियंत्राण में नहीं हैं। तथापि, राष्ट्रीय क्षेत्रा में प्रवेश पाने और कार्य करने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए वे आज भी राज्यों पर निर्भर हैं।

२) प्रभुसत्ता के सिद्धान्त में राष्ट्र-राज्य की स्वायतता अथवा पराधीनता पर बल दिया गया है। भूमंडलीकरण तथा स्थानीय विघटन की शक्तियाँ राज्य को स्वतंत्रा रूप से कार्य करने की क्षमता पर दबाव डालती हैं। राज्य अपने बल पर वैश्विक ताकतों का सामना करने में निरन्तर कठिनाई का सामना कर रहे हैं। एक देश के स्थानीय समूहों द्वारा सीमा पार के उसी प्रकार के समूहों के साथ सम्पर्क बढ़ रहे हैं और वे स्वायतता की अधिक से अधिक मांग कर रहे हैं जिससे राज्यों की स्वायतता घटी है।

बोध प्रश्न २

१) स्थानीय स्तर पर सशक्त स्थानीय समूहों के उभरने से नागरिकों की निष्ठा के एकमात्रा दावेदार होने की राज्य की स्थिति समाप्त हो रही है। क्षेत्रीय स्तर पर दक्षिण एशिया में राज्यों के विविध हित सशक्त क्षेत्रीय समूह बनने से रोक रहे हैं। वैश्विक स्तर पर विभिन्न वैश्विक संस्थाओं में उत्तर के देशों का वर्चस्व इन राज्यों के लिए प्रमुख चुनौती है।

२) अंतरराष्ट्रीय संगठनों की संख्या बढ़ रही है, नए मुद्दों पर विश्व का ध्यान जा रहा है और कई मुद्दों जैसे मानवाधिकार और लोकतंत्रा पर सर्वसम्मति बन रही है। इस प्रकार की उभरती हुई विश्व प्रणाली राष्ट्र-राज्य का स्थान नहीं ले सकती। राष्ट्र- राज्य आज भी अंतरराष्ट्रीय संबंधों का आधार है। विश्व प्रणाली राष्ट्र-राज्यों पर निर्भर रहेगी ।

बोध प्रश्न ३

१) इसका अर्थ उन वृहत आर्थिक नीतियों के पैकेज से है जो अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएँ, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष तथा विश्व बैंक विकासशील देशों पर लागू करते हैं ।

२) अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों की ओर से चलाए गए सुधार कार्यक्रमों से क्षेत्रा में विकास दर में वृद्धि नहीं हुई है। सुधारों के अपर्याप्त रूप से चलाए जाने तथा प्राथमिक क्षेत्रा, कृषि को पर्याप्त संरक्षण न दिए जाने के कारण क्षेत्रा में देशों को लाभ की प्राप्ति न के बराबर हुई, केवल भारत में ही विकास की दर ६ प्रतिशत की रही जोकि अन्य देशों के मुकाबले बेहतर है।